/

** अध्याय नं.4 **

** धूमिल के काव्य में सामाजिक परिप्रेक्ष्य **

समाज में परिवर्तन की कामना हर रचनाकार में होती हैं। वह अपनी रचनाधर्मिता के द्वारा सामाजिक रुढियों को उसमें व्याप्त विसंगतियों, विद्रुपताओ को निरस्त करना चाहता हैं। इस परिवर्तन के कुछ निश्चित तरीके और विचार धाराएं भी है।

जैसे - सुधारवादी आंदोलन की वैचारिकता, गांधीवाद, मार्क्सवाद आदि -

मोटे तौरपर धूमिल की कविता किसी मतवाद के साँचे में फिट कविता नहीं है। न तो कथ्य के धरातल पर और न अभिव्यक्ति के धरातलपर, फिर भी धूमिल की कविता अस्वीकार की कविता हैं। वे अस्वीकारते हुए भी किसी क्रांति की घोषणा नहीं करते।

वे समझते है कि, यहाँ के जन मानस में ऊब, उदासी, सहनशीलता, उपेक्षा इतनी गहराई तक जा चुकी है, जिनसे मुक्ति दिलाना बहुत कठिन है।

क्रांति का नारा लगा देने से क्रांति नहीं आ जाती। वे समझते हैं कि, विवशता या वक्त की साजिश इतनी गहरी है, व्यवस्थं की पकड इतनी सूक्ष्म है, कि उसको बेनकाब कर कमजोर कर पाना बहुत कठिन है। इसलिए वह बार-बार क्रांति के बडबोले शब्दों को अपना अस्त्र बनाने से इन्कार कर देता हैं। आम आदमी की तरह से अपने दब्बूपन से अपने हार को ही आगे पेश करता हैं।

"मैं झेपता हूँ और धूमिल होने से बचने लगता हूँ
फिर भी मै अंत तक आपको सहूंगा
वादों की लालच में आप जो कहोगे वह सब करुँगा
लेकिन जब हारुँगा, आप के खिलाफ खुद अपने को तोडूँगा
भाषा को हीकते हुए अपने भीतर। भूँकते हुए सारी घृणा के साथ।"

"अंत में कहूँगा सिर्फ इतना कहूँगा
हाँ! हाँ! मैं कवि हूँ! कवि याने भाषा में भदेस हूँ
इस कदर काय हूँ कि उत्तर प्रदेश हूँ।" (1)

कवि जानता हैं कि, अजी नौजवान विभिन्न नारों मुद्राओं के खोखले पन से इतने अचंभित हो चुके है। तथा भूख एवं विवशताओं से इतने ग्रस्त और त्रस्त है कि, बस देखते रह जाते हैं और कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं रह जाते क्योंकि उन्हें रोजगार दफ्तरों के सामने से रोज गुजरना पडता हैं।

हाँ जनवादी हवा अवश्य बहती रहती हैं। लेकिन यह हवा भूख से पत्तियाँ चबाती पीढी में क्या कुछ कर सकती है? पेट की अपेक्षाओं के सामने "कविता" आदमी के हाथों में क्रांति कैसे ला सकती हैं।

यद्यपि आज का रचनाकार अपनी रचना में आदमी को ही गा रहा है। अर्थात कविता का कथ्य आदमी ही है।

"इस वक्त जब कि कान नहीं सुनते हैं कविताएं
कविता पेटसे से सुनी जा रहीं है
गजल आदमी गजल नहीं गा रहा है
आदमी को गा रही है।" (2)

धूमिल की कविता में चित्रित किया गया आदमी सीधा, सरल, शोषित-पीडित आदमी है। अपने वक्त में गुजरते हुए आदमी की असलियत जानता, पहचानता हैं। उनका कहना है कि वह एक आदमी है जो "शासन" में केवल "राशन" की कामना से जीता हैं और दूसरा वह जो अनाज के पीछे या अनाज में घुसा रहकर पूरे अनाज का रस पीता हैं।

भूख, ऊब, सहनशीलता :-

धूमिल कहते है, अभावग्रस्त लोग तो वैसे के वैसे ही पडे है। तब वह आजादी को लेकर अपने आपसे प्रश्न करते हैं।

"अपने आपसे सवाल करता हूँ
क्या आजादी सिर्फ थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता हैं
या इसका कोई खास मतलब होता हैं।" (3)

कवि का कहना है इस बीस साल के विकास में सामने की चौरस्तोंवाली सडक तो भीड को ढोती हुई लाल-हरी बत्तियों के साथ चलती रही। पर सडक का पीछला हिस्सा अभी भी पीले अंधकार में शहर की पशुता से पिट रहा है और वह कुछ भी नहीं बोल रहा है।

धूमिल अपने युग की अमानवीय व्यवस्था के कारण उत्पन्न "भूख" से विवश संकट के प्रति आदमी को सावधान करके ऊब, उदासी और सहनशीलता को तोडने के लिए प्रेरित करता हैं। लोगों में छायी ऊब और विरक्ति की भावना ही स्थिति को यथास्थिति बनाए हुए है। वह ऐसी व्यवस्था को बदलना चाहता हैं। तभी तो वह बार-बार कहता है कि, यहाँ के लोगों में क्रांति संभव नहीं है क्योंकि वे उदासीन है।

"उस मुहावरे को समझ गया हूँ जो
आजादी और गांधी के नामपर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम बदल रहा है।" (4)

वे चुपचाप सुनते है, उनकी आँखों में विरक्ति हैं
पछतावा है, संकोच है, या क्या है कुछ पता नहीं चलता
वे इस कदर पस्त है कि तटस्थ है
इस देश में एकता युध्द की और दया अकाल की पूँजी है।
क्रांति यहां के असंग लोगों के लिए
किसी अबोध बच्चे के हाथों की जूजी है।"

कवि कहता है आजादी सिर्फ गांधीजी के नामपर चल रहीं है। जिससे न लोगों की भूख मिट सकती है न मौसम पर कोई असर होता हैं। समाज में रहनेवाली गरीब जनता यह अन्याय, अत्याचार चुपचाप सहती हैं, सुनती हैं इसके आगे कुछ नहीं कर सकती। इसी देश की यही क्रांति यहां के असंग लोगों के लिए किसी अबोध बच्चे के हाथों का खिलौना बन गया है।

कवि परिवर्तन प्रतिक्षा में चारों ओर "ऊब" और यातना के बाद उठनेवाले तीखे शब्दों के शोर में भी खोखला मैदान ही देखता हैं। धूमिल को पेट की आग से डरते हुए सबकुछ सहनेवाले भी "चुप" और इनकार भरी चीख दोनों एक ही तरह का फर्ज अदा करते हुए दिखाई देते हैं।

"जब कि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती हैं सच्चाई, सबसे होकर गुजरती है
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं।"

"जब की मै जानता हूँ कि, इनकार से भरी हुई एक चीख
और एक समझदार चुप, दोनों का मतलब एक है
भविष्य गढने में "चुप" और "चीख"
अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फर्ज अदा करते हैं।" (5)

भूख से पीडित होने तथा चालाक व्यवस्था के छदम् की प्रतिक्रिया में उभरी है। उनकी क्रांति की चेतना न तो हिंसक है और न गांधीवादी, वे तो पूरे शहर को अपनी ओर मिलाने की बात कहते हैं। वे कविता द्वारा ऊब, विरक्ति, उदासिनता और सहनशिलता को तोडने की बात कहते हैं। उनकी

मान्यता हैं कि, नैतिकता से जन्मी सहनशिलता परिवर्तन में बाधक रहती हैं।

"मगर मैं अपनी भूखी अंतडियां हवा में फैलाकर
पूरी नैतिकता के साथ अपने सडे हुए अंगो को सह रहा हूँ
भेडिये को भाई कह रहा हूँ।" (6)

धूमिल सही अर्थो में समस्या के कवि है। देश की प्रत्येक समस्या का उसने अनुभव करना चाहा। कुछ से उसे स्वयं गुजरता भी पडा। अपने आस-पास की दैनिक स्थिति एवं समस्याओं के प्रति वह जागरुक है। आजादी के चालीस साल बाद तक तो कई-कई उंची-उंची इमारतें बनी। विलासिता की सामग्री तैय्यार होती रही। परंतु उसी के साथ-साथ बेघरों की संख्या में भी वृध्दि होती रही और जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन में कमी होती रही।

यहीं विषम स्थिति का चिंतनशील व्यक्ति के सामने कई समस्याओंको रखनेवाली सिध्द हुई। ऐसी ही कुछ समस्याओंका चित्रण धूमिल ने अपनी कविताओं में किया है। धूमिल ने संसद के कुछ ऐसे प्रश्न किये हैं जिनका सीधा संबंध साधारण लोगों की सबसे विकराल समस्याओं से था। न्याय की समस्या, भाषा भेद, और तोड-फोड वाले हिंसक प्रदर्शनों की समस्या और जिसे सर्वोपरि कहा जा सकता हैं, वह भूख की समस्या धूमिल की चिंता के विषय रहें है।

भूख की समस्या :-

अपने प्रश्नों के जिन महत्वपूर्ण समस्याओंकी ओर धूमिल ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, उनमें रोटी की समस्या एकमात्र ऐसी समस्या है जिसपर हमारे देश की संसद मौन है।

अपनी कविताओंमें धूमिल ने संसद और जनतंत्र से अनेक प्रश्नों के जवाब चाहे है। हर बार उसे कोई उत्तर नहीं मिला है। परंतु रोटी की समस्यापर सधा गया संसद का मौन अपने में बहुत विशिष्ट है, रोटी और संसद इस कविता में धूमिल के समूचे काव्य का चिंतन बीजरुप से विद्यमान लगता हैं ।

"एक आदमी रोटी बेलता हैं
एक आदमी रोटी खाता हैं
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता हैं
वह सिर्फ रोटी से खेलता हैं
मैं पूछता हूँ -
यह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है।" (7)

आजादी के बाद हमारी आर्थिक क्षेत्र की प्रगति होने की बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। परंतु इस प्रगति से मिलनेवाले लाभ को उठाकर चलनेवाली इस देश की संसद साधारण मनुष्य तक नहीं पहुँच पायी।

मनुष्य की तीन सर्वोपरी आवश्यकताओं में **"रोटी"** सबसे अनिवार्य है। इसका अभाव मानव जीवनमें अकल्पनीय दुःख उत्पन्न करता हैं। धूमिल ने अपनी समग्र कविताओं **"रोटी"** की समस्या को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। धूमिल के भूख विषयक सभी विचारों, तर्कों का एक ही आधार है। -

"आज मैं तुम्हें वह सत्य बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है - इस दुनिया में
भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क
रोटी है।" (8)

इस भूख की व्यथा की आग तब और अधिक तीव्र हो जाती हैं, जब यह समाज में आ जाता हैं कि, गधे गुलगुले खा रहें है, लुच्चे, लफंगे मजे में जी रहें है। कवि के ही शब्दों में -

"और जो चरित्रहीन है
उसकी रसोई में पकनेवाला चावल
कितना महीन है।" (9)

यह भूख की समस्या पालतू बनकर सब कुछ सहनेपर मजबूर कर देती हैं। बेशर्म और बेहया होकर जीने को विवश कर देती हैं। रोटी देनेवालों के प्रति ईमान के नामपर व्यवहार में प्यार और लोच भरने को मजबूर कर देती हैं। अतः कवि सचेत करना चाहता हैं। -

"मगर मत भूलों की इन सबके बडी चीज
वह बेशर्मी है
जो अंत में
तुम्हें भी वहीं रास्तेपर लाती हैं
जहाँ भूख
उस वहशी को
पालतू बनाती हैं। (10)

ऐसी चेतावनी के बावजूद धूमिल को अपने समय की समस्या का सर्वग्रासी स्वरुप आता हैं, तो उसे हताश होकर यह भी कहना पडता हैं कि,

सचमुच मजबूरी है,
मगर जिंदा रहने के लिए
पालतू होना जरुरी है।" (11)

भूख की समस्या वस्तुतः व्यवस्था की समस्या होती हैं। अतः भूख की समस्या का जड, गलत राजनीति में खोजी जा सकती हैं। परंतु राजनेता इसे स्विकारते नहीं। वे तो इस समस्या का सारा दोष बढती आबादी अर्थात जनता के माथेपर थोंपकर स्वयं निर्दोष छूटना चाहते हैं।

यह उत्तर एकदम गलत नहीं लेकिन इसके लिए जिम्मेदार कौन है? जनता का अज्ञान ही इसके लिए जिम्मेदार है। लोक शिक्षा का अभाव इस देश के लिए अभिशाप सिध्द हुआ है। भूख, जनसंख्या और लोकतंत्र की सफलता–विफलता की परस्पर सापेक्षता की सच्ची पहचान (समझ) धूमिल की कविता में मिलती हैं वह और कहीं शायद ही मिले। (डॉ. ग.तु. अष्टेकर – "कटघरे का कवि धूमिल")

भाषा की समस्या –

अपने देश की मूलभूत समस्या भूख की समस्या है। वह मौलिक भी है। लेकिन हमारे राजनेताओं ने भूख की समस्या से लोगों का ध्यान दूसरी ओर ले जाने के लिए और कुछ समस्याओंको पैदा किया। भाषा की समस्या उन्हीं में एक है। उसे तो स्वाधीन भारत का एक बडा मजाक कहना होगा कि, सर्वसम्मत राष्ट्र "राष्ट्रभाषा" के रुप में प्रतिष्ठित हिंदी को "संपर्क भाषा" के रुप में स्वीकारने का पहले आग्रह हुआ और फिर अंग्रेजी के साथ–साथ इसे भी एक राष्ट्रभाषा मानने की मांग हुई। भाषा समस्या के उद्‌भव की चर्चा करते हुए धूमिल ने लिखते हैं –

"यानी कि मेरे या तुम्हारे शहर में
चन्द चालाक लोगों ने
बहस के लिए
भूख की जगह
भाषा को रख दिया है।

उन्हें मालूम है कि, भूख से
भागा हुआ आदमी।"

"भाषा की ओर जायेगा
उन्होंने समझ लिय है कि,
एक भुक्कड जब गुस्सा करेगा
अपनी ही अंगुलियां
चबायेगा।" (12)

जब कुछ स्वार्थी लोगोंने भाषा समस्या के आड में अपना शोषण का अधिकार बरकरार करने का इंतजाम किया। इस नयी समस्या को फैलने, बिकट होने में देर नहीं लगी। देखते-देखते इसकी चपेट में सारा भारतवर्ष आ गया। इस भाषा समस्या के स्वरुप और दुष्परिणामों को शब्द देते हुए धूमिलने लिखा है। -

"भाषा और भाषा के बीच की दरार में
उत्तर और दक्षिण तरफ
फन फटकता हुआ
एक दो मुँहा विषधर
रेंग रहा है
रोजी के नामपर
रोटी के नामपर
जगह-जगह जहर
और वह देखो की आडड
प्रांतीयता का चेहरा लगाये हुए
कोई घुस पैठिया है?" (13)

व्यवस्था समस्या -

धूमिल की विशिष्टता इस बात में है कि, किसी स्थिति, अवसर, प्रसंग संदर्भ को वह काव्य का विषय बनाता हैं। यही स्थिति व्यवस्था के संबंध में कहीं जा सकती हैं।

व्यवस्था का यथार्थ (वास्तव) प्रस्तुत करना कवि का स्पष्ट लक्ष्य है। इसमें प्रजातांत्रिक व्यवस्था एवं राजनेताओं के नारेबाजी एवं चारित्रिक पतन की चर्चा अनेक वार है। पर उसके लिए विचित्र समस्या, रोटी, सडक, तथा संसद से संबंध होते हुए स्वतंत्र है, वह है - व्यवस्था के साथ कैसे लोहा लिया जाय।

व्यवस्था विरोधी का जीना दूभर कर दिया जाता हैं। उसे सदैव लगता है जैसे सभी इस व्यवस्था के साथ चिपके हुए हैं। सही सत्य को कहने का सामर्थ्य किसी में नहीं रहा। सभी के अतंकित एवं भयभीत होने की स्थिति को वर्णित करते हुए धूमिल कहते हैं -

"हाँ मैं भयभित हूँ
जिंदा रहने के लिए
घोडे और घास को
एक जैसी छूट है
कैसी विडंबना
कैसा झूठ
दरअसल अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
मदारी की भाषा है।" (14)

"हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फेंक दिया है - जनतंत्र
सिकी रोज सैंकडों बार हत्या होती हैं
और हर बार
वह भेडियों की जुबान पर जिंदा है।" (15)

इससे बढकर किसी जनतांत्रिक व्यवस्था की दुर्दशा क्या हो सकती हैं। जिसका नाम लेवा स्वयं भेडिये हो। भेडिया शब्द मार्क्सीय चिंतन का प्रमाण है।

डॉ. विधानिवास मिश्र का यह मत व्यवस्था संबंधी कवि की सही स्थिति का परिचय कराता हैं। धूमिल की कविता बुनियादी तौरपर केवल व्यवस्था से नहीं जूझती तो व्यवस्था के अमानवीय परिस्थिती से जूझती रही। उसकी आक्रमकता में जहाँ एक ओर लाचारी हैं, वहाँ दूसरी ओर भविष्य के दिगंत तक **गूंज** उपजानेवाली टंकार भी हैं। (डॉ. हुकूमचंद राजपाल - समकालीन बोध और धूमिल का काव्य)

राजनीतिक समस्या -

समकालीन कवियों में धूमिल ही एक ऐसे कवि है, जिनकी कविताओंमें राजनीतिक परिस्थितियों को नये अंदाज एवं तेवर में प्रस्तुत किया गया है। इस कवि ने सही रुप में समकालीन समस्याओंको समझा है, तथा समझ के आधारपर व्यक्ति समाष्टि के आधारपर परस्पर संबंध एवं दायित्व को एक ओर कविता, भाषा और व्याकरण के पारस्पारिक संबंध से प्रस्तुत करता हैं, तो दूसरी ओर वह इनमें व्याप्त अंतर्विरोध तथा जटिलता को राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता हैं।

यही कारण है कि, इनकी अधिकांश कविताओंमें जनतंत्र में कई रुपों में प्रस्तुत किया गया है। धूमिल की काव्य चेतना में मूलतः व्यक्ति एवं समाज सडक तथा संसद के माध्यम से "सामाजिक दायित्व" "राजनीतिक समझ" की सहज प्रतीति होती हैं।

कवि को राजनीति में जनतंत्र तथा कवितामें शब्दतंत्र ऐसी पहचान करती हैं जो इसके पूर्व का कवि न कर पाए हो। इसलिए वह स्वतः घोषित करता हैं -

"मुझे अपनी कविताओं के लिए
दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।" (16)

पहला प्रजातंत्र कवि की दृष्टि में व्यर्थ रहा है वह मात्र प्रदर्शन भ्रष्टाचार तक सीमित रहा है। लोगों में रोटी (भूख) की समस्या पूर्ववत हैं। इसलिए वह राजनीतिक क्रांतिद्वारा दूसरे जनतंत्र की तलाश करना चाहता हैं। कवि को दूसरे जनतंत्र की तलाश अपनी कविताओं के लिए करनी है। धूमिल ही एक ऐसा कवि है जिसमें कविता और राजनीतिक की समझ एक रुप में है।

धूमिल राजनीतिक चेतना एवं जागरुकता का कवि है। समकालीन कविता की सबसे बडी पहचान यथार्थ (वास्तव) को यथार्थ रुप में प्रस्तुत करना है। संसद से सडक तक में कवि ने राजनीतिक स्थिति को उजागर करने के लिए अनेक प्रसंगों संदर्भों को कविता का विषय बनाया है। यही कारण है कि, धूमिल की कविता को समझने के लिए उसको राजनीतिक समझ को जानना अनिवार्य है।

वैसे तो कवि ने हर क्षेत्र में मुखौटे को अनावृत्त करने का उपक्रम किया है। पर राजनीतिक विडंबनाओं में उसका एवं खीझ कुछ अधिक प्रखर रुप में सामने आती हैं। उसे राजनीतिक स्थिरता का आभास मात्र टोपियों के बदलने से होता हैं। उनका दृढ विश्वास है कि, धूमिल की दृष्टि में राजनीति में आज किसी प्रकार की मर्यादा शालीनता एवं देश हित को स्थान नहीं मिल रहा है। सभी तरफ अधिकार, लिप्सा प्रजातंत्र के नामपर लूट का बोलबाला है।

यही कारण है कि, वह संसद से सडक तक तथा सडक से संसद तक की दूरी में जो कुछ देखता सुनता तथा भोगता हैं, उन्हें अपनी कविता का विषय बनाता हैं। कवि को तब आश्चर्य होता हैं जब देश के नेता अपने देश की समस्याओं की ओर ध्यान देने की अपेक्षा आंतर्राष्ट्रीय समस्या एवं सुधार अथवा विश्वशांति का प्रचार करते हैं।

राजनीतिक बोध में व्यंग्य - स्वर उभारने का एक एक और महत्वपूर्ण कारण होता हैं -

राजनेताओं की निरर्थक नारेबाजी। इसका भी धूमिल ने अनेक बार, अनेक प्रसंगों में उल्लेख

किया है। नेताओं के व्यक्तित्व का दोहराव उनकी चरित्र-हिनता निर्वाचित प्रतिनिधियों में दायित्व पलायन, योजनाओं की विफलता के साथ अन्य थोथी सही का चित्रण भी किया है। जिनसे कवि की राजनीतिक चेतना का परिचय मिलता हैं। देशव्यापी असंतोष और नेताओं की कोरी कलावादी उसे लिखने एवं सोचने पर विविश करती हैं। उसे गत बीस वर्ष सभी दृष्टियों से व्यर्थ प्रमाणित होते हैं और वह मुखर होता हैं -

"बीस साल बाद और इस शरीर में
सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरते हुए
अपने आप से सवाल करता हूँ
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता हैं
या इसका कोई खास मतलब है।" (17)

तथाकथित देशभक्ति का नारा लगानेवाले नेताओं की वास्तविकता का बोध जब संसद से सडक तक एक अध्ययन कवि को हो जाता हैं, तभी वह कहने पर विवश होता है -

"उस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा हैं
जिससे न भूख मिटी है न मौसम
बदल रहा है।" (18)

आम आदमी की रोटी की समस्या का समाधान राजनीतिक चेतना के आधारपर हुआ है। उसका विश्वास प्रत्येक से समाप्त होता दीखता हैं। यही कवि का निरर्थक बोध युग सही स्थिति को उजागर करता हैं। कवि राजनेताओं के प्रति रुष्ट तो हैं ही साथ ही युवा पीढी की दिशाहीनता को भी दृष्टि से ओझल नहीं करता। उसे मूलतः शासन प्रणाली एवं व्यवस्था में कभी गडबडी दीखती हैं तभी वह कहता हैं -

"मैं उन्हें समझाता हूँ
वह कौनसा प्रजातांत्रिक नुस्खा है
कि जिस उम्र में
मेरी मां का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया हैं।" (19)

राजनीतिक दृष्टि में हम धूमिल को उस कोटि का कवि मानते हैं जो प्रत्येक स्थिति को जड से पकडता हैं। यहीं कारण है कि वह प्रजातांत्रिक मूल्यों की आवश्यकतापर बल देता हुआ इस अव्यवस्था को मूलरुप में समाप्त करने का प्रयत्न करता हैं।

वह अनेक प्रसंगों की पटकथा में संयोजना करता हैं, जिनसे आज के राजनेताओं की वास्तविक स्थिति का पर्दाफाश होने लगता हैं। कवि ने ऐसे लोगों को षड्यंत्रकारी, सुराजिये, चालाक, इत्यादि विशेषणों से संबोधित किया है। (डॉ. हुकूमचंद राजपाल - "समकालीन बोध और धूमिल का काव्य")

नारी समस्या -

धूमिल के कविता में नारी समस्या अनेक रुपों में प्रस्तुत की गयी है। यहां कवि किसी प्रकार की उपदेशात्मक वृत्ति को नहीं अपनाता। वरन् सहज रुप में ऐसी स्थितियों, प्रसंगों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता हैं। जिनसे नारी की समाज में वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता हैं।

यही सही है कि, समाज में नारी को अवहेलना अथवा सम्मान का ब्यौरा प्रस्तुत नहीं करता अथवा अनेक समस्याओं के संदर्भ में इसे भी देखना चाहता हैं। गृहस्थी में नारी का महत्व उसकी दृष्टि में है। क्योंकि पति-पत्नी के मेल में परिवार का विकास संभव है। कई बार रोटी की, भूख की समस्या के कारण वह "यौन समस्या" पर तीक्ष्ण व्यंग्य करता हैं। नारी को एक समस्या के समाधान के लिए अन्य समस्याओं का शिकार होना पडता हैं।

नर-नारी के पारस्पारिक वैधानिक, अवैधानिक संबंधों को प्रस्तुत करनेवाले शब्दों से कवि किसी न किसी महत्वपूर्ण समस्या को उजागर करना चाहता हैं। सचमुच वह पाठाकों की रुचि से परिचित हैं। इसलिए सर्व परिचित समाज में जानी-पहचानी स्थितियों को आधार बनाता हैं। -

अंधी लडकी की आँखों में
उससे सहवास का सुख तलाशना है।

औरत आंचल हैं
जैसा कि लोग कहते हैं, स्नेह है
किंतु मुझे लगता हैं
इन तीनों से बढकर
औरत एक देह है।" (20)

चूल्हा कुछ नहीं बोलता
चुपचाप जलता हैं और जलता रहता हैं
औरत -
गवें गवें उठती-गगरी में
हाथ डालती हैं

फिर एक पोटली खोलती हैं।" (21)

एक संपूर्ण स्त्री होने से पहले ही गर्भाधान कि क्रिया से गुजरते हुए
उसने जाना की प्यार
घनी आबादवाली बस्तियों में
मकान की तलाश है
हर लडकी
तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाति हैं।" (22)

उपर्युक्त उध्दरण में धूमिल की नारी संबंधी धारणाओं के विभिन्न पक्ष तो स्पष्ट होते हैं। साथ ही उसकी समझ का परिचय भी मिलता हैं। धूमिल का लक्ष्य समाज में नारी को तिरस्कृत, अपमानित घोषित करना नहीं है। वरन् वह जिन स्थितियों में देखता है, समझता हैं - कहने की चेष्टा करता हैं।

यौन समस्या -

यौन समस्या धूमिल की कविताओं में नये ढंग से प्रस्तुत हुई है। वह किसी प्रकार का प्रणय प्रसंग नहीं उभारता और न ही नारी के रुप में अंगों के उभार में मांसल सौंदर्य को व्यंजित करता हैं।

'पटकथा' तो सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओंका काव्यात्मक लेखा-जोखा है। कवि की समस्या यह है कि, सब कुछ अस्त-व्यस्त होते हुए भी "सामान्य" चल रहा है। कहीं कोई हलचल नहीं, कोई परिवर्तन नहीं। देशभक्ति, समाजवाद, शांति के अर्थ ही बचे रहें है - कार्यान्विति एवं व्यवहार में सबकुछ विपरित हैं।

इस देश की संसद केवल भूख, भाषा, विवाद, तोड-फोड आदि से संबंधित समस्याओंके लिए ही जवाब दे यह समझना ठीक नहीं। यहाँ की सामाजिक समस्याओं को राजनीति के साथ समन्वित करके देखा था। उनका सुविस्तृत चित्रण "पटकथा" का मूल कथ्य है, धूमिल अपनी समकालीन व्यवस्था से असंतुष्ट था।

इसलिए उसने एक ऐसे शोषण मुक्त स्वस्थ समाज की कल्पना की जिसका चित्रण इस कविता में है -

"मैने इंतजार किया
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत बारिश में

नहीं टडपेगी
अब कोई आदमी कपडों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दबाव के अभाव में
घुट-घुट कर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगी
कोई किसी को नंगा नही करेगा
आसमान अपना है
जैसे पहला हुआ करता था
सूर्य हमारा सपना है।" (23)

सूरज का स्पप्नदर्शी यह विद्रोही कवि जीवन भर अपने दु:सह स्थितियों से जूझता रहा। अपने समय की विकृति राजनीति को शब्दों के फोडों से खाल उधेडता रहा। संसद को निरुत्तर करनेवाले सवाल पूछता रहा। यह सवाल धूमिल ने इसलिए किया की वह बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय व्यवस्था का सपना साकार करना चाहता था। आनेवाले कल के लिए वह आस्थावान था।

आज चारों तरफ मूल्यों का -हास हो रहा है। व्यक्ति मूल्यहीन परिवेश में सांस ले रहा है। उसे पथ दिखाई नहीं दे रहा है। जीवन मूल्यों के इस संकट से धूमिल सचेत थे।

"सहानुभूति और प्यार
अब ऐसा छलवा है जिसके जरिए
एक आदमी दूसरे को अकेले
अंधेरे में ले जाता हैं और
उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है।" (24)

व्यक्तिगत और अकेलेपन पीडा से हटकर वे समाज, देश, संसद, लोकतंत्र वर्गभेद और जीवन के मुखौटों को उतारने की कोशिश करते रहें किंतु जनता के त्रासद अनुभवों को वे भूल नहीं पाये। उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने खुलकर की है। व्यक्ति के नैतिक पतन को देखकर वे दुखी हैं।

"मगर यह वक्त घबराए हुए लोगों की शर्म
आंकने का नहीं
और न ही पूछने का -
कि संत और सिपाही में
देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन हैं।" (25)

वस्तुतः सामाजिक स्थिति में सचाई का कोई वारिस नहीं। अब सच के लिए सबूत की जरुरत पडती है। धूमिल के अनुसार :-

"जो चरित्रहीन हैं
उसकी रसोई में पकनेवाला चावल
कितना महीन है
इस वक्त सच्चाई को जानना
विरोध में होना है।" (26)

सामाजिक क्रूरता के घेराव में वह नए मानव मूल्यों के लिए बराबर लडता रहा। अस्तित्व का यह संघर्ष व्यक्ति के रुप में मात्र धूमिल का ही नहीं बीसवीं शताब्दी का सृजनशील, शोषित और उत्पीडित मेहनतकश जनता का अपना इतिहास हैं। वह समाज की पशु प्रवृत्तियों पर सांघातिक चोट करता है और सामाजिक तथ्यों का उद्घाटन करता हैं। किंतु अपनी सामाजिक विवशताओं और संस्कारगत मनोगतवादी अवधारणाओं के कारण वह अंतर्विरोध के वर्गीय अंतर्वस्तु को अमूर्त छोड़ देता हैं।

"भूख ने उन्हें जानवर कर दिया
संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया
फिर भी वह अपने है
अपने है
अपने है
जीवित भविष्य के सुंदरतम सपने है।" (27)

धूमिल का कहना है पशु अपना भोजन तब तक दूसरे को नहीं देता, जब तक वह भर पेट खा न ले। लेकिन मनुष्य बहुत हदतक इसमें अपनी कुर्बानी दे सकता हैं और एक दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार बन सकता हैं।

दीन-दलित मजदूरों के प्रति धन लोलुप पिशाचों के घृणित व्यवहार का दर्द उभरता हैं और "जाति का धिक्कार" असलियत की आग को जलाता हैं।

"तुम्हारें लिए कहा गया हर वाक्य
एक धोखा है जो तुम्हें दलदल की ओर
ले जाता हैं
लहलहाती हुई फसले
बहती हुई नदी
उडती हुई चिडियाँ

यह सब सिर्फ तुम्हें गूंगा करने की चाल है
क्या तुमने कभी सोचा कि, तुम्हारा
यह जो बुरा हाल है
इसकी वजह क्या है।" (28)

धूमिल की कविता में गांवों का आदर्शीकरण नहीं वास्तविक परिष्कार है। एक कठोर वास्तविकता जब से वे देखते हैं, निर्धनता, भूखमरी, गरीबी, लहलहाती फसलों का सूखना, किसानों की निराशा, पंचायती समझौते, पुलिस दमन नीति, गुंडा-गर्दी, नेताओं की साजिश। धूमिल जहाँ गांव को लेकर खीझ, आक्रोश, घुटन और उससे उन्मुक्ति की आवाज है, वहीं वहाँ लोगों के प्रति अति सहानुभूति भी है।

"वहां न जगंल है न जनतंत्र
भाषा और गूंगेपन के बीच कोई
दूरी नहीं है
एक ठंडी और गांठदार अंगुली माथा टटोलती हैं।
सोच में डूबे हुए चेहरों और
वहां दर की हुई जमीन में
कोई फर्क नहीं है।" (29)

धूमिल में अपने लोगों के प्रति अतीव प्यार था, ममता थी, लगाव था, भाई चारे की प्रबल भावना थी। परिवार के लिए वह मां का हृदय था और पिता की छाह थी। उत्पीडित किसानों-मजदूरों का अपना सगा भाई था।

अपने प्राचीन संस्कारों में जकडा हुआ भारतीय समाज आज भी धर्म के सुनियोजित षड्यंत्र से घिरा हुआ हैं। धर्म भ्रांति के कारण ही आदमी को आज धर्म के नाम से वितृष्णा हो गयी है।

भूत कालीन क्रियाओं से
घिरे हुए लोग
समय की अर्थी उठाये चल रहे हैं।" (30)

समाज में व्याप्त निरर्थक एवं अमानवीय रुढियों तथा निर्जीव और अर्थहीन परंपराओं का भी धूमिल की कविता में विरोध है। धर्म के नामपर चलाये जा रहें बडे-बडे मठ सिर्फ खोखले अस्तित्व के झूठे प्रचार अड्डे है। उनका कहना है -

"मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का
सबसे बडा बौध्द मठ

बारुद का सबसे बडा गोदाम है
अखबार के मटमैले हाशिये पर
लेटे हुए एक तटस्थ और कोढी देवता का
शान्तिवाद नाम हैं। (31)

उनका कहना है कि, वास्तविकता यह है कि, मानव को जोडनेवाले इस सूत्र ने मानव को तोडने में सबसे बडी भूमिका निभाई है। इसके कारण दुनिया में बडे–बडे युध्द और नर–संहार हुए है। आज भी धर्म के नाम पर मानव–मानव से बंटा हुआ, एक दूसरे के खून का प्यासा हो रहा है। धूमिल को धर्म के इस विकृत रुप से घृणा थी।

धर्म के नामपर एक ओर धार्मिक संस्थाएं लोगों को भाग्यपर भरोसा करके बैठे रहने के लिए प्रेरित करती हैं, तो दूसरी ओर पंडे, पुरोहित, मुल्ले और पोप "धर्म खतरे में है" का नारा देकर अपनी आमदनी बढाते हैं।

धूमिल यद्यपि मानते थे कि, "अनास्था हमारी कविता का मूल स्वर नहीं। धर्म का सबसे भद्दा और अमानवीय पक्ष साम्प्रदायिकता हैं। यह एक ऐसा सामाजिक जनून है जिसकी जडें हमारी धर्मान्धता में छिपी रहती हैं और जहरीली पत्तियाँ पूरे सामाजिक परिवेश पर छा जाती हैं।

सांप्रदायिकता मनुष्य से उनका मनुष्यत्व छीनकर उसको राक्षस बना देती हैं। सच तो यह है कि मानव प्रेम, भाईचारा, सहिष्णुता, करुणा, संयम, न्याय और विश्वदृष्टि आदि जिन मूल्योंपर आदर्शों के पोषण का दावा धर्म करता हैं, उन सभी के विरुध्द सांम्प्रदायिकता खडी मिलती हैं। वह धर्म का नकारात्मक पक्ष है। धूमिल धर्म के नामपर एक दूसरे को डंक मारने और एक दूसरे के विरुध्द विष वमन करने की प्रवृत्ति से परेशान है।

"फन पटकता हुआ
दो मुंहा विषधर

रेंग रहा है
रोजी के नामपर
रोटी के नामपर
जगह, जगह जहर
फेंक रहा है।"   (32)

वर्तमान व्यवस्था का यह दोहरा चरित्र है कि, 'भूखे गर्भाशय की ओर से' एक दूसरे के सामने दुश्मन की तरह खडे है। कुर्सियों में संवादी चेहरे उग आये है। जो भाषा के नाम पर मजहब के नामपर अपराधियों के झुंड में शरीक होकर एक नींद और दूसरे की नफरत से लड रहें है। मानवता के विरुध्द अपराध के षड्यंत्रकारी लोगों को इस निर्लज्जता के लिए धूमिल ने धिक्कारा है -

"तो रामनामी बेचकर या रंडियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं।"   (33)

धर्म के नामपर जो पाखंड हमारे समाज में रचा गया, उस परिवेश में देव-मूर्ति उसके लिए सर्व शक्तिमान हो गई। लेकिन उसका अस्तित्व लघु से लघुतर होता चला गया। अपने से परे, परोक्ष शक्ति के प्रति व्यर्थता की खोज है। लिपियों अंधे कुहराम में देखते ही देखते एक परिचित चेहरा किसी तत्सम शब्द की तरह अपरिचित हो गया है। इस प्रकार राजनीतिक ढोंग, छल, पाखंण्ड और उसकी मानव विरोधी हरकतोंपर धूमिल की कविता कडा प्रहार करती हैं।

धूमिल को विश्वास है कि वे जिस समाज के लिए संघर्ष कर रहें है, उसमें धीरे-धीरे नव चेतना आ रहीं है। "पीले-पत्ते पतझड की ओर" उडते नजर आ रहें है और दीवार पर उभरते शब्द बता रहें है कि, -

"कल सुनना मुझे
जब दूध के पौंधें झर रहें हो सफेद फूल
निःशब्द पीते हुए बच्चे की जुबान पर
और रोटी खाई जा रहीं है चौके में
गोश्त के साथ जब
खटकर (कमाकर) खाने की खुशी
परिवार और भाई चारे में
बदल रही हो- कल सुनना मुझे
आज मैं लड रहा हूँ।"   (34)

इसप्रकार धूमिल का अस्तित्व गाँव में इसतरह घुल-मिल गया है कि हम उसे अलग नहीं कर सकते। वे अपनी जमीन पर खडे होकर अपनी जमीन को अपनी मिट्टी का शब्द देते हैं। उनकी कविता एक खरी अभिव्यक्ति हैं। देहाती और शहरी जीवन के बीच की खाई को धूमिल ने पहचाना था। इस खाई की बढती हुई चौडाई और गहराई को उन्होंने देखा और उसके कारणों को जानने की कोशिश की है।

आज के बुध्दिजीवी अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए अपनी विचार धारा बदल लेते हैं। अपना ईमान छोंड देते हैं। यहाँ तक की अपनों की हत्या करने में भी तनिक नहीं हिचकते।

जनता के सुख-दुख उसके सपनों और निराशाओं को जैसा जीवंत चित्र धूमिल ने खींचा है, शायद किसी अन्य कवि ने न किया। धूमिल सही अर्थों में जनता के कवि है। शहरों में दुख, कष्ट और अभाव के साथ जहाँ मौज, मस्ती, भोग विलास, और चुटकियों में लाखों कमाने की योजनाएँ है। वही उनकी "नगर कथा" कविता में नगरीय जीवन का विक्षिप्त रुप दृष्टव्य है।

"सभी दुखी है
सबकी वीर्य वाहिनी नलियां
साईकिलों से रगड-रगडकर
पिची हुई है
दौड रहें है सब
सम जडत्व की विषम प्रतिक्रिया
सबकी आँखें सजल
मुट्ठियां भींची हुई है
व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में
तुमुल नगर संघर्ष मचा है
आदिम पर्यायों का परिचय
विवश आदमी
जहाँ बचा है।" (35)

एक तरफ भूखा, रियाया और दूसरी ओर हमारा चरित्रहीन, शोषक राजनैतिक समाज जहाँ सचमुच मजबूरी है। मगर जिंदा रहने के लिए पालतू होना जरुरी है। गांव की ओर जाते हुए धूमिल देखते है - चारों ओर सुविधा मिली है तुम्हें हंकारता हुआ देखा हूँ यह देश बहुत बडा है तुम अपनी भूख से इसे भर नहीं सकते। आओ अचरज वहाँ पडा है उनमें जहाँ बनिए की आँख बनैला जानवर सी जल रही हैं।

वस्तुतः धूमिल के लिए सभी समस्याओं की जड भूख है किंतु इस भूख को वे दक्षिण पंथी राजनैतिक साजिश मानते हैं। उनका कहना है -

"क्या मैंने गलत कहा? आखिरकार
इस खाली पेट के सिवा
तुम्हारे पास कौन-सी सुरक्षित
जगह है, जहाँ खडे होकर
तुम अपने दाहिने हाथ की
साजिश के खिलाफ लडोगे।" (36)

धूमिल का शोषित वर्ग गांव का खेतिहर मजदूर है। जो दिन-भर परिश्रम करके शाम के वक्त जमींदार की गालियों की बौछार सहता हैं। उच्च वर्ग को उन्होंने प्रतिवादिता का विश्लेषण कहा है। यद्यपि यह सही है कि, मजदूर अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण अपेक्षाकृत अधिक क्रांतिकारी होता हैं। किसान अपनी भूमि से लगाव, गांव की अवस्था, बिघडी हुई संस्कृति के कारण परिवर्तन और क्रांति का इच्छुक होते हुए भी जागरुक नहीं होता क्योंकि - वह

"असलियत और अनुभव के बीच
खून किसी कमजात मौके पर कायर है।" (37)

धूमिल ने राष्ट्र को उन्नति के पथपर चलने में सहायता दी वहीं उसने मोहभंग की बात भी कहीं हैं। "उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें दृढता और कर्मशक्ति उत्पन्न हो। जिनमें हमें अपनी दुरावस्था की अनुभूति हो। हम देखें कि किन अंतर्बाह्य कारणों से हम इस निर्जीवता और -हास की अवस्था तक पहुँच गये और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।

सामाजिक सुधारों के बाद भी गांवो में अछूतों के समान नारियाँ आज भी मध्ययुगीन बर्बरता और शोषण का शिकार होती रही हैं। गांवों में आज भी उनकी दशा में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। शोषण, व्यभिचार और अनैतिक संबंधों का एक अच्छा खासा चित्र धूमिल की कविता में उपलब्ध है।

"जहाँ बूढे
खाना खा चुकने के बाद अंधे हो जाते हैं
जवान लडकियाँ अंधेरा पकड लेती हैं।" (38)

धूमिल के संपूर्ण साहित्य में बेवसी, क्रांति, परिवर्तन, आक्रोश भरा हुआ मिलता हैं। उनकी कविताएँ गहरी अनुभूति का संधान है। उन्हें पढकर सुप्त चेतना झंकृत हो उटती हैं, आँखो में भीषण आग जल उठती हैं।

धूमिल ने नारी को लेकर क्रमशः उस औरत की बगल में लेटकर (संसद से सडक तक) "अतिश के अनार सी वह लडकी" (कल सुनना मुझे), "टयूशन पर जाने से पहले", "पत्नी के लिए", "सत्यभामा", "स्त्री" (सुदामा पांडे का प्रजातंत्र) कविताएं लिखी है जो उनकी नारी विषयक दृष्टिकोनों को विविध रुपों में चित्रित किया है।

इन कविताओं में धूमिल ने नारी को किशोरी, युवती, वेश्या, वीरा, सफल गृहिणी, आदर्श माँ, सफल बहन, और कुशल पत्नी के रुप में प्रस्तुत किया है।

वे यह मानते हैं कि, "स्त्री माँ के रुप में आंचल की छाया है, जो स्नेह देती है परंतु पुरुष के लिए एक शरीर है, जो उसकी काम-पिपासा बुझाता हैं।"

धूमिल की कविता में कहीं पुरुष नारी के प्रति आसक्त-पानी में बसी हुई कच्चे इरादों की एक भरी-पूरी दुनिया है। तो कहीं एक लडकी अपने प्रेमी का सिर छातीपर रखकर सो रही अपने देह के अंधेरे में अपनी समझ और अपने सपनों के बीच" उसके प्रेम-पत्रों की आँच में रोटियाँ सेंकती हैं।

"ओह ....
बीस सेबों की मिठास से भरा हुआ यौवन
जब फटता हैं तो न सिर्फ टैंक टूटते हैं
बल्कि खू के छींटे जहां-जहां पडते हैं
बंजर और परती पर आजादी के कल्ले फूटते हैं
और ओ प्यारी लडकी।" (39)

आम शहरी औरत धूमिल को परजीवी औरत दिखाई देती हैं जो कि अपने शरीर को अपनी अजीविका साधन बनाती हैं। धूमिल को जिस नारी की तलाश है, वे भारतीय समाज में बहुत कम दिखाई देती हैं। क्योंकि कुछ स्त्रियाँ भूख और गरीबी से लाचार होकर शरीर बेचती हैं परंतु अधिकांश ऐसो है जो मेहनत मजदूरी करके और पत्थर तोडकर अपना और अपने कुटुंब का पेट पालती हैं। सानाजिक नैतिकता और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण दे देती हैं। लेकिन यौन संबंधों में अराजकता चाहने और मनुष्य की शुद्रता को चित्रित करनेवाले इन लेखकों ने मेहनत-मजदूरी के उदाहरणों को तो अपवाद ठहराया और शरीर बेचनेवाले उदारहण को सत्य मानकर हर स्थिती पर लागू किया।

धूमिल की कविता में व्यक्त नारी विषयक विचारों के आकलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, जहाँ उन्होंने नारी को निश्चित संबंधों की परिधि नें रखकर देखा, वहाँ उसका चित्र यथार्थ परक और प्रेरणात्मक बन गया है। किंतु जहाँ मात्र शरीर रुप में देखा वहाँ वह मात्र वासनात्मक कुंठा से

ग्रस्त नजर आती हैं।

नारी के प्रति धूमिल का साफ दृष्टिकोन है। वे भाषा में चमत्कार पैदा करना चाहते थे, इतनाही नहीं तो उनकी कुंठित मनोदशा थी जिसके चलते उन्होंने शब्द विकृति पैदा की।

धूमिल अश्लील और शील का ख्याल रखनेवाला कवि था। उनकी दृष्टि सदा सार्थक शब्दोंपर रहती थी। सामाजिक सुधारों के बाद भी गाँवों में अछूतों के समान नारियाँ आज भी मध्ययुगीन बर्बरता और शोषण का शिकार होती रही है। गाँवों में आज भी उनकी दशा में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। शोषण, व्यभिचार और अनैतिक संबंधों का एक अच्छा चित्र धूमिल की कविता में उपलब्ध है।

"जहाँ बूढे
खाना खा चुकने के बाद अन्धे हो जाते हैं
जवान लडकियाँ अंधेरा पकड लेती हैं।"(40)

आजादी के इतने वर्षों के बाद भी नारी की स्थिति सुखद नहीं बन सकी।

"उनकी जाँघों की हरकत
पाला लगी मटर की तरह
मुर्झा गयी है उनकी आँखों की सेहत
दीवार खा गयी है।" (41)

धूमिल के इन यौन प्रतिकों को देखकर अक्सर लोगों के दिमाग में एक सवाल पैदा होता हैं कि, क्या इसतरह के प्रयोग धूमिल के लिए आवश्यक था वह शरीरी नारी, गरीमा के फरेब को भी दूर फेंक देता हैं। शायद उसका उत्साह विस्थापित हैं, पर उसका ईमान अपन जगह पर है, और यहीं बात हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण होनी चाहिए। धूमिल के काव्य में काम नहीं हैं, कामुकता के प्रति गहरी वितृष्णा है।

नारी समस्या के कई पक्ष है। शहर में स्त्रियों को नौकरियों में प्रवेश तो मिलने लगा, परंतु समाजिक मान्यताओं के चलते वे मानसिक रुप से स्वतंत्र नहीं हो पाई। -

"खिडकी से पूछता है पेड
और लडकी से कुछ
युवा लडका पूछता हैं
क्या दोनों एक ही सवाल
पूछते है।" (42)

"युवती अभी प्यार के चोचलों की
वर्नाक्यूलर सीख रही हैं
इसका एक पैर लाज और दूसरा ललक पर है
लेकिन फूले पेटवाली औरत का चेहरा
उसकी हथेली की तरह सपाट है
वह जानती है कि, बच्चे के साथ
दुनिया में क्या आता हैं।" (43)

संयुक्त परिवार के टूटने और बच्चों की उचित देख-रेख न हो सकने के कारण कामकाजी औरतों का कार्यभार बढ गया है।

धूमिल की कविता में नारी संबंधी यौन प्रतीक बहुलता से देखे जा सकते हैं। वे कभी "पागल औरत के गाभिन पेट की तरह" सडक के पीछले हिस्से में "पीला अंधकार" छाये रहने की बात करते हैं।

धर्म और परंपरा ने जहाँ भारतीय जीवन को विश्रृंखल होने से बचाया वहीं अंधविश्वास, पाखंडों, आडंबारों, और रुढि को बढावा देकर सामाजिक विकास की गति को अवरुध्द भी किया है। "नीलाम घर में खडा आदमी", "भूखे भिखारी को कलपता, देखकर, खून में उडनेवाली पत्तियों का पीछा करना", गलत इरादों से", "बेमानी" समझता हैं।

अपनी मार्क्सवादी वैचारिकता के कारण धूमिल धर्म और ईश्वर में आस्था को अवैज्ञानिक और प्रतिक्रियावादी मानते थे। उनकी मान्यता थी कि धर्म के मार्ग पर भाग्यवाद और अंधविश्वास को बढावा देना हैं। इससे जनता में जडता और दब्बूपन की भावना बढती हैं। मार्क्स ने धर्म को जनता के लिए अफीम की तरह मादक बताया था।

जनता के भाग्यवाद और धर्मभीरुता के साथ-साथ उन्होंने पंडे और पुरोहितों की धूर्तता और मक्कारी का भी पर्दाफाश किया है।

"बचपन का जिद्दी धूमिल जात-पांत, भूत-प्रेत और धार्मिक अंधविश्वासों में अपनी अनास्था के कारण पिता की दृष्टि के बराबर नास्तिक रहा है।"

अपने प्राचीन संस्कारों में जकडा हुआ भारतीय समाज आज भी धर्म के सुनियोजित षड्यंत्र से घिरा हुआ है। धर्म की भ्रांति के कारण ही आदमी को आज धर्म के नाम से वितृष्णा हो गयी है। धर्म आदमी को मदान्ध बनाता हैं।

"भूत कालीन क्रियाओं से
घिरे हुए लोग
समय की अर्थी उठाये चल रहें है।" (44)

सांप्रदायिकता धर्म का सबसे घिनौना रुप है। जिसपर धूमिल ने अपनी कविताओं में व्यापक स्तर पर प्रहार किया है।

"वे खेतों में भूख और शहरों में
अफवाहों के पुलिन्दे फेकते हैं
देश और धर्म और नैतिकता की
दुहाई देकर
कुछ लोंगों की सुविधा
दूसरों की "हाथ" पर सेंकते हैं।" (45)

वास्तविकता यह है कि, मानव को जोडनेवाले इस सूत्र ने मानव को तोडने में सबसे बडी भूमिका निभाई है। इसके कारण दुनिया में बडे–बडे युध्द और नर–संहार हुए है और आज भी धर्म के नामपर मानव–मानव से बंटा हुआ एक–दूसरे के खून का प्यासा हो रहा है। धूमिल को धर्म के इस विकृत रुप से घृणा थी।

धर्म के लिए मरे हुए लोगों के नाम धूमिल का संकेत है कि –स्नान घाट पर जाता हुआ हर रास्ता देह की मंडी से होकर गुजरता हैं।

धर्म का संघर्ष से कोई सरोकार नहीं है फिर भी जाने–अनजाने उसे कलंकित किया गया है। इससे विश्व का सर्वाधिक अहित हुआ है। हिंदुस्थान की महानता और श्रेष्ठता का आधार यह धर्म ही है। यही कारण है धर्म के प्रति अवधारणा उत्पन्न होने से हमारा अहित भी सर्वाधिक हुआ है।

प्रगतिवादी कविता वस्तुतः सामाजिक यथार्थ की कविता हैं। प्रगतिशील काव्य–दृष्टि से कला–

सृजन की एक ही पध्दति है 'यथार्थवाद'। जीवन की उसकी विविधता और समग्रता में देखने और सप्रयोजन पुर्नचित करने का नाम है।

यथार्थवाद कविता या कला मनुष्य को जीवन के समग्र यथार्थ से परिचित कराती हैं, जिससे कि वह जीवन और जगत में जो विसंगत और कुत्सित हैं। उसके निवारण तथा जो श्रेष्ठ सुंदर और उदात्त हैं, उसकी उपलब्धि के लिए समुत्सक ओर प्रयत्नशील हो।

इस दृष्टि से जब धूमिल की कविता का मूल्यांकन करते हैं तो उसमें ग्रामीण और शहरी जीवन के विविध पक्षों का सजीव चित्रण मिलता हैं। ग्रामीण जीवन में व्याप्त जडता, अज्ञान, अंधविश्वास तथा ग्रामीण व्यक्ति की संवेदना संघर्ष विपन्नता, उनमुक्तता, सहजता और मस्ती जो शोषित उत्पीडित ग्राम्य जीवन को सूखने नहीं देती तथा वह अदम्य जीजीविषा जो उसे हर संकट से लडने की प्रबल प्रेरणा देती है।

धूमिल की कविता में शहर और देहात के विविध चित्र हैं। भारत की अधिकांश जनता देहात में रहती हैं। इसलिए धूमिल अपनी कविता को शहर माहौल के तक ही सीमित रखना नहीं चाहते थे।

राजनीति संसद होकर सडक पर आ गयी इनकी कविता की शब्दावली, सामाजिक और राजनैतिक शब्दावली है। उनकी कविता में ज्यादातर जनतंत्र, संसद, जनता, आदमी, जंगल, व्याकरण, भाषा यह शब्द है। आजादी के बाद हुए चौतरफा मोहभंग तथा आम आदमी की जिंदगी में राजनीति के बढते दबाव के कारण धूमिल बार-बार इन शब्दों के इर्द-गिर्द लौटकर इन्हीं शब्दों तथा कटु स्थितियों के बयान व्दारा बदलाव चाहते थे।

"भूख कौन उपजाता है" के माध्यम से धूमिल ने "अकाल दर्शन" में इसका वर्णन किया है। हमारे राजनीतिज्ञ इसे अविवेक का कारण मानते हैं। लेकिन धूमिल के लिए भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क रोटी है। पर क्या करें सचमुच मजबूरी है। मगर जिंदा रहने के लिए पालतू होना जरुरी है "

भारतीय जनतंत्र के रखवाले जिनका यह मत हैं कि उसके मरते ही मनुष्यता अंधी हो जायेगी। जिन्हें अपनी सेवाओंपर गर्व है, उस जनतंत्र की रोज सैंकडों बार हत्या होती हैं और हर बार वह भेड़िये जुबान पर जिंदा है।

श्रमजीवी वर्ग और उसके सहयोगी विकृत प्रवृत्तियों के माध्यम से प्राचीनता के स्थानपर नवीनता लाने की तडप को धूमिल ने मुखरित किया है। -

"बदलों अपने-आपको बदलों

यह दुनिया बदल रही हैं
और यह रात हैं, सिर्फ रात
इसका स्वागत करों
यह तुम्हें
शब्दों के नये परिचय की ओर लेकर
चल रही है।"   (46)

"मोचीराम" का बदलाव समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों पर गहरी चोट है। उसके सामने समाज के तरह-तरह के लोग आते हैं जो उसके लिए जूते के समान है। -

"आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं
फिर भी मुझे ख्याल रहता हैं
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं-कहीं एक अदब आदमी है।"   (47)

मानवीय सामाजिक संवेदना -

धूमिल की दृष्टि में गांव के महाजन शोषक रुप है और शहर के रईसों का खोखला चेहरा भी है। धूमिल का शोषित वर्ग गांव खेतिहर मजदूर है, जो दिनभर परिश्रम करके शाम के वक्त जमींदार की गालियों की बौछार सहता हैं।

उच्च वर्ग को उन्होंने प्रतिवादिता का विश्लेषण कहा है। किसान अपनी भूमि से लगाव गांव की अवस्था और संस्कृति में परिवर्तन का इच्छुक होते हुए भी जागरुक नहीं होता।

"असलियत और अनुभव के बीच
खून की किसी कमजात मौके पर कायर है।"   (48)

धूमिल के मानवीय और सामाजिक संवेदनापर विचार करते समय गांव की गरीबी, भूखमरी, तंगी आदि चीजों का चित्रण है।

"जब कवि गांव की जिंदगी का एक हिस्सा बनकर वहाँ के लोगों की जिंदगी का विश्लेषण करते हुए उनकी समस्याओं पर विचार करता हैं। एक कठोर वास्तविकता जब से वे देखते हैं, निर्धनता भूखमरी, गरीबी, लहलहाती फसलों का सूखना, जमीनी विवाद, बैलों का मरना, किसानों की निराशा, पटवारी की चालाकी, लाठियों का बहना, गुंडागर्दी, नेताओं की साजिश। धूमिल में जहां गांव को लेकर आक्रोश, घुटन, और उससे उन्मुक्ति की आवाज है, वहीं लोगों के प्रति सहानुभूति हैं। -

"वहाँ न जंगल है न जनतंत्र
भाषा और गूंगेपन के बीच कोई
दूरी नहीं है
एक ठंडी और गांठदार अंगुली माथा टटोलती हैं
सोच में डूबे हुए चेहरों और
वहां दर की हुई जमीन में
कोई फर्क नहीं हैं। (49)

"उनकी जरुरतों के लिए पूरा कंधा दे देनेवाला" कवि टूटे हुए परिवार में धनुषंटंकार झेलते हुए जवान बछडे सा कराहता हैं।

"मेरे गांव में
वही आलस्य, वही ऊब
वही कलह, वही तटस्थता
हर जगह और हर रोज
और मैं कुछ नहीं कर सकता
मैं कुछ नहीं कर सकता।" (50)

केदारनाथ अग्रवाल की तरह गांव की मिट्टी और किसान से जुडे हुए धूमिल में ग्रामीण संवेदना एक लंबा दर्द है, जो कभी उबल पडता है, और कभी भीतर ही भीतर सुलगता रहता हैं।

धूमिल मूलतः घरबारी इन्सान है। घर से, मां से, धरती से, बच्चों से उनका लगाव गहरा है, इसलिए सारी दुनिया पर क्रोध आता हैं।

चाहे ग्रामीण परिवेश हो या शहरी जीवन, धूमिल के सामने "भूख" उनकी प्रमुख समस्या है। आदमी अपना अस्तित्व गवां देता हैं या फिर क्रांति की भूमिका तैयार करता हैं।

ओ आटे की शीशा
चावल की सिटकी।" (51)

धूमिल का कहना हैं कि हमारे देश की सबसे बडी समस्या है ' भूख। यह भूख मनुष्य को भी लाचार बना देती हैं। बेशर्म और बेहया होकर जीनेपर विवश करती हैं। रोटी देनेवालों के प्रति इमान के नामपर व्यवहार में प्यार लोच भरने में मजबूर कर देती हैं।

"मगर मत भूलो कि इन सबसे बडी चीज
वह बेशर्मी है

जो अंत में
तुम्हें भी उसी रास्ते पर लाती हैं
जहाँ भूख
उस वहशी को
पालतू बनाती हैं।" (52)

लोकशिक्षा का अभाव देश की जनता के लिए अभिशाप सिध्द हुआ है। वस्तुतः बढती जनसंख्या की समस्या व्यापक अज्ञान ही रही है। धूमिल ने इस वास्तविकता को स्विकारा था। उसने भूख और जनसंख्या की वृध्दि में पारस्पारिक संबंध को स्वीकारा था। दोनों को लोकतंत्र के लिए विघातक माना था।

"पेट में घँसे छुरे के साथ भागती है अल्लारखी
सस्ते गल्ले की दुकान की बाहरी
दीवार से टकराती है उसकी खून भरी मुठ्ठी
में भिंचा हुआ
राशन कार्ड, हरित क्रांति के विरुध्द
उसकी टांगों में आफत है।" (53)

धूमिल अपने समय की प्रायः सभी प्रकार की समस्याओं से परिचित था। प्रेमचंद के भांति धूमिल भी सामाजिक व्यवस्था को बदलना चाहते थे। लेकिन उन्होंने गोर्की की तरह उसे बदलनेवाले मजदूरों की क्रांतिकारी ऐतिहासिक भूमिका को समझा नहीं। इसलिए वे अपनी कविताओं में मजदूरों के जीवन दर्शन को अपनाकर भी उसे पथप्रदर्शक नहीं बना सके। इन विद्रोही भावनाओं की ओर प्रगतिशीलता की लोकप्रियता से प्रेरित होकर ही धूमिल ने संभवतः **"मोचीराम"**, "मकान", **"किस्सा"**, "कवि 1970", "गांव", **"नक्सलबाडी"**, "प्रौढ शिक्षा", आदि कविताओं के माध्यम से समाज में परिवर्तन चाहा।

"इस वक्त जब कि कविता मांगती हैं
समूचा आदमी अपनी खुराक के लिए
उसके मुंह से खून की बू
आ रही है
अपने बचाव के लिए
खुद के खिलाफ हो जाने के सिवा
दूसरा रास्ता क्या है।" (54)

वस्तुतः प्रगतिशील साहित्य गति पैदा करें, समाज को एक नई दिशा दें, इसी से साहित्य जगत् में "प्रगतिशील आंदोलन" नारा बना। धूमिल के मानवीय और सामाजिक संवदेना पर विचार करें तो गरीबी, भुखमरी, तंगी, आदि का चित्रण बहुत देखने को मिलता हैं।

"वादों की लालच में
आप जो कहोगे
वह सब करूँगा
लेकिन जब हारूँगा
आपके खिलाफ खुद अपने को तोडूँगा
भाषा को हीफते हुए अपने भीतर
थूकते हुए सारी घृणा के साथ।" (55)

धूमिल की कविता में. गाँवों का आदर्शिकरण नहीं वास्तविक परिष्कार है, जो उन्हें अपनी जिंदगी से मिली है। आत्मिक अनुभूति हैं, जिसके सहारे वे अपनी बात कह जाते हैं।

एक कठोर वास्तविकता जब से वे देखते हैं निपट, निर्धनता, भुखमरी, गरीबी, किसानों की निराशा, जमीनी-विवाद, झूठे मुकदमें की पेशकशी, नेताओं की साजिश - धूमिल में जहाँ गांव को लेकर आक्रोश, घुटन, उन्मुक्ति की आवाज है, वही वहाँ के लोगों के प्रति सहानुभूति हैं।

"मेहनतकश की पसलियों पर
तेरा प्यार बदलाव को साबित करता हैं
जैसे झोपडी के बाहर
नारंगी के सूखे छिलके बताते हैं
अंदर एक मरीज अब
स्वस्थ हो रहा है
ओ क्रांति की मुंहबोली बहन
जिसकी आंतों में जन्मी है
उसके लिए रास्ता बन।" (56)

सामाजिक सुधारों के बाद भी गांवों में अछूतों के समान नारियाँ आज भी बर्वरता और शोषण का शिकार होती रही हैं। शोषण, व्यभिचार और अनैतिक संबंधों में आज की नारी डूब रही है।

धूमिल की एक कविता हैं "आतिश के अनार सी वह लडकी"। रोशन आरा बेगम नामक युवती

के आत्मबलिदान की कहानी भारतीय नारी की प्रेरणा बन सके यही कवि चाहता हैं। प्रस्तुत कविता में कवि युवतियों को संघर्ष के लिए प्रेरित करता हैं और उन्हें घर के छोटे-मोटे काम छोडकर साज-शृंगार को त्यागकर संघर्ष के लिए आगे आने को कहता हैं।

"यह चोटी करने का वक्त नहीं और न बाजार का
बालों को ऐंठकर जूडा बांध लो
और सबके सब मेरे पास आ जाओ,
देखो, मै एक नई ताजा खबर के साथ
घर की दहलीज पर खडा हूँ।" (57)

गांव की अभावग्रस्त जिंदगी का मार्मिक चित्रण धूमिल की अनेक कविताओं में हुआ है। किसान की अशिक्षा और निर्धनता की जड में शोषकों के षड्यंत्र है। गांव से शहर तक बिखरें ये शोषक स्वार्थी है, फिर भी एक बात पर सहमत हैं कि किसान ही इनका शिकार है। "मुक्ति की रास्ता" कविता में धूमिल गांव में जमींदारों द्वारा किसानों पर किय जानेवाले अत्याचारों का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि -

"क्या तुम्हें याद है वह दिन? वह घटना
मारे गये थे पुरजन कटे हुए खेत की
मेंड पर लोथें गिरी थी। खूनी खंखार की तरह
जोतदार का सिर खेत में पडा था। अनाज
ढोया जा चुका था सुरक्षित मुकाम पर।" (58)

धूमिल की कविता में ग्रार्मीण चेतना का एक आकर्षक आयाम ग्रामीण परिवेश अनायास ही उपस्थित हो जाता हैं।

धूमिल का बाह्य व्यक्तित्व अनुशासित होने के कारण जहाँ दूसरों पर हावी हो जाता था वहीं उनका व्यक्तित्व पूरे वृत्त में एक विशुध्द कवि का स्वाभाविक व्यक्तित्व था। निश्चल भावुकता यथार्थपूर्ण विद्रोह से ओत-प्रोत। मानवीय संवेदनाओं के साथ तार्किक प्रतिध्बदता की तलाश करती हुई आस्था जातीय भेद को भुलाकर असहाय भेद को भूलाकर तथा निर्धनों की सहायता के साथ विकास की लालसा उनमें निरंतर बनी रहीं।

"यद्यपि
उनकी जरुरतों के लिए मैं पूरा कन्धा
दे देना चाहता हूँ।" (59)

धूमिल के व्यक्तित्व की सबसे बडी पहचान थी आक्रोश। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में सामाजिक स्थिति के साथ पारिवारिक संस्कार की भूमिका बडी महत्वपूर्ण होती है। धूमिल के साथ भी बहुत कुछ ऐसा ही हुआ।

"दिवारों की चौकसी के बावजूद
एक नारा बन गया था। भाषा की रात में।" (60)

धूमिल ने अपनी रचना में चार आधारों को रेखांकित किया है, वह इस प्रकार है –

1. ग्रामीण समस्या का सिंहावलोकन
2. नारी सेक्स और भावुकता
3. राजनीतिक परिदृश्य
4. व्यंग्य और समकालीन यथार्थ

धूमिल की प्रगतिशील चेतना धर्म और जाति के नामपर होनेवाले पाखंड की पहचान है। छुताछूत को वे नहीं मानते थे। ईद के दिन वे मुसलमान के घर का खाना खाते थे। चमार तथा ब्राम्हण उनके लिए बराबर थे। बल्कि ईमानदार तथा मेहनतकश उनके लिए बेईमान तथा दूसरों की कमाई पर जीनेवाले ब्राम्हण से लाख गुना अच्छा समझते थे। उन्हें मानवतावाद अच्छा लगता था।

"तुम पशु बनने को तैयार नहीं हो
तुम्हारे चेहरे से आज भी आदमीयत की गन्ध आती हैं।""

गांवों में किसानों की हालत जूते हुए खेत जैसी है। वहाँ की जनता अपनी जरुरतों के आगे असहाय है। इसका चित्रण धूमिल की "खेवली" नामक कविता में देखने को मिलता हैं।

शब्दों को खोलकर रखनेवाले धूमिल की कविता में सपाटता और नग्नता नजर आती हैं। धूमिल के ग्रामीण संस्कार उसे बिना किसी लाग–लपेट की सच्ची बात करने के लिए विवश करते हैं।

"क्रांति
यहाँ के असंख्य लोगों के लिए
किसी अबोध बच्चे के
हाथ की जूजी है।" (61)

आधुनिक समाज टूटने और बिखरने की पीडा धूमिल की काव्य में व्याप्त हैं। जिस संक्रमण काल में धूमिल जीवित रहें, साहित्य रचते रहें वास्तव में वह मूर्तियों के टूटने का ही काल था।

"कविता में जाने से पहले
मैं आपसे ही पूंछता हूँ
जब इससे न चोली बन सकती हैं
न चोंगा
तब आप कहो
इस ससुरी कविता को
जंगल से जनता तक
ढोने में क्या होगा।" (62)

धूमिल अपनी कविता में इस ठंडी निर्जीव जनता को उद्बोधित करते हैं।

"तनो
अकडो
अमरबेली की तरह मत जियो
जड पकडो
बदलो अपने आपको बदलो
यह दुनिया बदल रहीं है। (63)

उपर्युक्त उध्दरण में कवि धूमिल जी ने यह कहा है कि, किसी अमरबेली की तरह मत जिओ जीना है तो अपने आपको बदल डालो, देखो यह दुनिया हर पल नया रुप धारण कर लेती हैं, इसलिए हमें अपने आपको बदलना ही पडेगा।

अपने देश के नामपर धूमिल को धुआं, कुहासा, कुआं, और खाई नजर आती हैं। वे टूटे हुए पूलों के नीचे वीरान सडकोंपर टूटी हुई चीजों की ढेर में अपनी खोई हुई आजादी का अर्थ ढूंढना चाहते हैं। मगर चारों तरफ दूषित विचार दिखाई पडते हैं। हर कोई अपने काम में लगा हुआ सहानुभूति, प्यार, आत्मीयता, अहिंसा, ईमानदारी, और विवेक की आड में छल रहा है।

"सिर्फ एक शोर है
जिसमें कानों के पर्दे फटे जा रहे है
राष्ट्रधर्म, देशहित, रोजगार, शिक्षा, हिंसा-अहिंसा

सैन्य, शक्ति, देशभक्ति, आजादी
वाद, बिरादरी, भूख, भीख, भाषा
शांति, क्रांति, शीतयुध्द, एटम बम, सीमा,
एकता सीढियां साहित्यिक पीढियाँ निराशा
झांय-झांय, खांय-खांय, हाय-हाय, सांय-सांय। (64)

कवि का कहना है हमारी चारों तरफ सिर्फ शोर ही शोर सुनाई देता हैं। जिस शोर ने हमारे कानों के पर्दे फटे जा रहें है। राष्ट्रधर्म, देशहित, आजादी, भूख, शांति-क्रांति इन लब्जों की तरफ कोई ध्यान ही नहीं देता। हर एक अपना स्वार्थ जताने के पीछे लगा रहता हैं। दुनिया की उसे कोई पर्वा नहीं होती। इसलिए कवि शर्म और सरलता को छोडने की सलाह देता हैं।

"अपनी आदतों में
फूलों की जगह पत्थर भरों
मासूमियत के हर तकाजे को
ठोकर मार दो
अब वक्त आ गया है कि तुम उठो
और अपनी ऊब को आकार दो। (65)

धूमिल ने ऐसा इसलिए कहा है कि, समाज में जो अन्याय हो रहा है उसका विरोध हमें करना चाहिए। हमारी जो आदतें हैं वह फूलों की तरह मासूम है। इसलिए इस मासूमियत की जगह पर हमें पत्थर रखना चाहिए। क्योंकि अब ऐसा वक्त आ गया है, हमें अपने हक के लिए झगडना ही होगा।

"स्त्री को लेकर लिखी गई उनकी कविता "उस और की बगल में लेटकर" में किसी तरह का आत्मप्रदर्शन जो इस ढंग की युवा प्रतिभाओं की लगभग एकमात्र चारित्रिक विशेषता हैं। साथ ही एक ठोस मानव स्थिति की जटिल गहाराइयों मे खोज और टटोल है। जिसमें दिखाऊ आत्महीनता की बजाय अपनी ऐसी पहचान है, जिसे आत्म-साक्षात्कार कहा जा सकता हैं।

उस औरत की बगल में लेटकर
मैंने महसूस किया की घर
छोटी-छोटी सुविधाओं की लानत से
बना है।" (66)

घर आंगन से लेकर समाज तक धूमिल का व्यक्तित्व एक खुली हुई किताब है। आर्थिक

दबावों और अपनी स्वतंत्र प्रकृति के कारण अपनी पढाई को आगे नहीं बढा सका - "अकाल दर्शन" में धूमिल का यह मनोभाव दृष्टव्य होता हैं। -

"भूख कौन उपजाता हैं
वह इरादा जो तरह देता हैं
या वह घृणा जो आँखोपर पट्टी बांधकर
हमें घांस की सट्टी में छोड आती हैं।" (67)

जीवन संघर्ष है, और यहीं संघर्ष धूमिल की कविता में हमें निरंतर दृष्टिगोचर होता हैं।

"बच्चे भूखे है
मां के चेहरे पत्थर
पिता जैसे काठः अपनी ही आग में
जले हैं ज्यों सारा घर।" (68)

धूमिल की कविता में हरी-भरी दूब यानी कि, लघु मानव की आशाओं - आकांक्षाओं का प्रस्तुतीकरण बडे सुंदर ढंग से हुआ है।

"भूख ने उन्हें जानवर कर दिया है
संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया
फिर भी वे अपने है
अपने है
अपने है
जीवित भविष्य के सुंदरतम सपने है।" (69)

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार :-

"धूमिल की कविता मजबूत धरातल की ओर बढी। शिल्प और बिंब नियोजन में काफी सजगता आ गई। उस समय नयी कविता खासकर अर्थ की लय के घोर विरोध में अपना स्वर उंचा करते रहे। इसलिए कविता उन्हें - खाली किए गये शहर की तरह दिखती है।" किंतु विपक्ष में जाने से पहले कवि 1970 में उनकी आत्म-स्वीकृति देखिए -

"मैं झेंपता हूँ
और धूमिल होने से बचने लगता हूँ
याने बाहर का 'दूर-दूर'

भीतर का बिल-बिल होने से
बचने लगता हूँ।" (70)

धूमिल अपनी कविता में सिर्फ सत्य का पक्षधर बनकर सामने आना चाहते थे।

"मैं सहज होना चाहता हूँ
ताकि आम को आम
और चाकू को चाकू कह सकूं।" (71)

अपनी स्मृति को सार्थक उद्देश्यों के लिए और अधिक गहरा बनाते हुए वे पत्थर, गुफा, आम, जंगल, रोटी चिडियां, पेड, जाता, चक्की, चूल्हा उत्तेजनाओं बैल, घोडा, भूख, जाल, नदी, और अन्याय को सहेजते हुए कहते हैं।

"शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो
अक्षरों के बीच गिरे हुए
आदमी को पढो
क्या तुमने सुना कि,
यह लोहे की आवाज है या
मिट्टी में गिरे हुए खून
का रंग।" (72)

वे सही अर्थों में एक अल्पशिक्षित गांव में पूरी तरह से बसे हुए किसान जीवन की कठोरताओं, व्यंग्यों और मुहावरों को अपनी ग्रामीण संम्पदा में जीनेवाले सशक्त कवि थे।

धूमिल में प्रतिभा भी है और क्रांतिधर्मिता भी। वे प्रतिभा के शस्त्र निरुपक है। प्रतिभा के चेतनात्मक पक्ष पर अधिक बल देते है।

"मैंने देखा कि इस जनतांत्रिक जंगल में
हर तरफ हवाओं के नीचे से निकलते हैं
हरे-हरे हाथ और पेडों पर
पत्तों की जुबान बनकर
लटक जाते हैं।" (73)

कवि कविता को अपना सर्वस्व देकर भी संतुष्ट नहीं है। उसे लगता हैं कि, उसका

जीवन व्यर्थ ही चला गया। जीवन में कुछ भी महत्वपूर्ण न कर पाने की पीडा व्यक्त करते हुए लिखते है

"पता नहीं कितनी रिक्तता थी
जो भी मुझसे होकर गुजरा – रीत गया
पता नहीं कितना अंधकार था मुझमें
मैं सारी उम्र चमकने की कोशिश में
बीत गया।" (74)

धूमिल कविता करने को एक महत्वपूर्ण दायित्व समझता था। जिसे निभाने के लिए उसने अपना जीवन समर्पित कर दिया।

सुदामा पांडे धूमिल की कविता उनके व्यक्तित्व के अनुरुप आधुनिक मानव के मोह भंग, त्रास, भय, आक्रोश एवं संघर्ष की कविता है। धूमिल का व्यक्तित्व उनकी कविताओं को आकार देता हैं।

धूमिल के व्यक्तित्व में जो सादगी, आत्मनिर्भरता, आत्मगौरव, एवं आक्रामकता थी वहीं उसकी कविता में अभिव्यक्त हुई है। धूमिल का काव्य उसके क्रांतिकारी व्यक्तित्व का दर्पण मात्र है।

***** 0 *****

xxx अध्याय नं.4 xxx

1. संसद से सडक तक – धूमिल – कवि 1970 पृष्ठ 64, 65
2. संसद से सडक तक – धूमिल – कवि 1970 पृष्ठ 61
3. संसद से सडक तक – धूमिल – बीस साल बाद पृष्ठ 10
4. संसद से सडक तक – धूमिल – अकाल दर्शन पृष्ठ 16,18
5. संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम पृष्ठ 41,42
6. संसद से सडक तक – धूमिल – शान्तिपाठ पृष्ठ 25
7. कल सुनना मुझे – धूमिल – रोटी और संसद पृष्ठ 33
8. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 114
9. संसद से सडक तक – धूमिल – मुनासिब कार्रवाई पृष्ठ 84
10. संसद से सडक तक – धूमिल – कुत्ता पृष्ठ 72
11. संसद से सडक तक – धूमिल – शहर का व्याकरण पृष्ठ 57
12. संसद से सडक तक – धूमिल – भाषा की रात पृष्ठ 88
13. संसद से सडक तक – धूमिल – भाषा की रात पृष्ठ 93,94
14. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 105
15. संसद से सडक तक – धूमिल – शहर में सूर्यास्त पृष्ठ 44
16. संसद से सडक तक – धूमिल – नक्सलबाडी पृष्ठ 66
17. संसद से सडक तक – धूमिल – बीस साल बाद पृष्ठ 10
18. संसद से सडक तक – धूमिल – अकाल दर्शन पृष्ठ 16
19. संसद से सडक तक – धूमिल – अकाल दर्शन पृष्ठ 17
20. संसद से सडक तक – धूमिल – पतझड पृष्ठ 60
21. कल सुनना मुझे – धूमिल – किस्सा जनतंत्र पृष्ठ 16
22. संसद से सडक तक – धूमिल – कविता पृष्ठ 7
23. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 100,101
24. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 108,109
25. संसद से सडक तक – धूमिल – बीस साल बाद पृष्ठ 10
26. संसद से सडक तक – धूमिल – मुनासिब कार्रवाई पृष्ठ 84
27. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 121
28. संसद से सडक तक – धूमिल – प्रौढशिक्षा पृष्ठ 47

29. कल सुनना मुझे – धूमिल – खेवली पृष्ठ 58

30. कल सुनना मुझे – धूमिल – जवाहर नेहरु की मृत्युपर पृष्ठ 8

31. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 104

32. संसद से सडक तक – धूमिल – भाषा की रात पृष्ठ 83

33. संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम पृष्ठ 40

34. कल सुनना मुझे – धूमिल – आज मैं लड रहा हूँ पृष्ठ 69

35. कल सुनना मुझे – धूमिल – नगर कथा पृष्ठ 49

36. संसद से सडक तक – धूमिल – नक्सलबाडी पृष्ठ 67

37. संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम पृष्ठ 41

38. संसद से सडक तक – धूमिल – मकान पृष्ठ 50

39. कल सुनना मुझे – धूमिल – अतिश के अनारसी वह लडकी पृष्ठ 24

40. संसद से सडक तक – धूमिल – मकान पृष्ठ 50

41. संसद से सडक तक – धूमिल – उस औरत की बगल में लेटकर पृष्ठ 28

42. सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – तीन सत्यभामा पृष्ठ87

43. सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – संसद समीक्षा पृष्ठ 31

44. कल सुनना मुझे – धूमिल – जवाहरलाल नेहरु की मृत्युपर पृष्ठ 8

45. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 110

46. संसद से सडक तक – धूमिल – प्रौढशिक्षा पृष्ठ 48

47. संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम पृष्ठ 37

48. संसद से सडक तक – धूमिल – मोचीराम पृष्ठ 41

49. कल सुनना मुझे – धूमिल – खेवली पृष्ठ 58

50. कल सुनना मुझे – धूमिल – गाँव में कीर्तन पृष्ठ 76

51. सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – भूख पृष्ठ 42

52. संसद से सडक तक – धूमिल – कुत्ता पृष्ठ 72

53. कल सुनना मुझे – धूमिल – प्रजातंत्र के विरुध्द पृष्ठ19

54. संसद से सडक तक – धूमिल – कवि 1970 पृष्ठ 61

55. संसद से सडक तक – धूमिल – कवि 1970 पृष्ठ 65

56. सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – भूख पृष्ठ 82

57. कल सुनना मुझे – धूमिल – अतिश के अनारसी वह लडकी पृष्ठ 24

58. सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – मुक्ति का रास्ता पृष्ठ 58

59. कल सुनना मुझे – धूमिल – गाँव में कीर्तन पृष्ठ 76

60. कल सुनना मुझे – धूमिल – खून के बारें कविता पृष्ठ 60

61. संसद से सडक तक – धूमिल – अकाल दर्शन पृष्ठ 18

62. संसद से सडक तक – धूमिल – कवि 1970 पृष्ठ 62

63. संसद से सडक तक – धूमिल – प्रौढशिक्षा पृष्ठ 48

64. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 117

65. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 113

66. संसद से सडक तक – धूमिल – उस औरत की बगल में लेटकर पृष्ठ 28

67. संसद से सडक तक – धूमिल – अकाल दर्शन पृष्ठ 15

68. कल सुनना मुझे – धूमिल – आज मैं लड रहा हूँ पृष्ठ 68

69. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 121

70. संसद से सडक तक – धूमिल – कवि 1970 पृष्ठ 64

71. सुदामा पांडे का प्रजातंत्र – धूमिल – मैं सहज होना चाहता हूँ पृष्ठ 47

72. कल सुनना मुझे – धूमिल – धूमिल की अंतिम कविता पृष्ठ 80

73. संसद से सडक तक – धूमिल – पटकथा पृष्ठ 109

74. कल सुनना मुझे – धूमिल – उसके बारें में पृष्ठ 57

75. विपक्ष का कवि धूमिल – राहुल पृष्ठ 72